यह ऋषभदेव भगवान की स्तुति चलती है। यह आत्मा जिसे पूर्ण पर्यायरूप से प्रगट हुआ, ऐसे परमात्मा को साध्य में, लक्ष्य में लेकर यह स्तुति की गयी है, क्योंकि जिसे आत्मधर्म प्राप्त करना (हो) और प्राप्त हुए हों, उनमें सर्वज्ञ परमात्मा वे निमित्तरूप से देवरूप से होते हैं। जिन्हें आत्मा की दिव्यशक्तियाँ आत्मपदार्थ में पड़ी है, उनकी जिसे भक्ति जगी है अर्थात् शक्तिवान ऐसा जो आत्मा, उसकी जिसे अन्तर में भक्ति अर्थात् रुचि अर्थात् प्रीति अर्थात् परिणमन हुआ है, उसे निश्चयभक्ति कहा जाता है। अर्थात् सच्ची भक्ति। उसे सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण देव जिन्हें दिव्यशक्ति प्रगट पूर्ण वर्तमान में वर्तती है, उनके प्रति भक्ति का राग, उल्लास, प्रेम, प्रतीति, प्रीति आये बिना नहीं रहती और उनकी पहिचान भी उसे—धर्मी जीव को होती है।

स्तुति करते हुए आचार्य महाराज ऋषभदेव भगवान इस भरतक्षेत्र में आद्य थे, वहाँ से उनकी स्तुति की है। यह भगवान ऋषभदेव का आत्मा सर्वार्थसिद्धि में था, वहाँ से आया। वहाँ से इनकी शुरुआत की है। (यह) करते हुए यहाँ कहाँ तक आया? पहला तो (कहा), हे नाथ! आप सर्वार्थसिद्धि में थे। वहाँ आपके कारण उस विमान की शोभा थी। यह आप जब वहाँ से पृथ्वी पर नाभिराजा के कुल में आये, उसकी शोभा नष्ट हो गयी है। प्रभु! आपके कारण वहाँ शोभा थी। आप यहाँ आये तो कुल की शोभा आपके कारण से हुई। और माता की शोभा भी आप गर्भ में आये (तो) वह माता भी समस्त स्त्रियों में सर्वोत्कृष्ट गिनती में आयी और उन्हें पटबन्ध बँधा कि जहाँ तीर्थंकर तीन लोक के नाथ जिनके गर्भ में आये, वह स्त्री एक, दो भव करके मुक्ति पावे, ऐसी जिसकी योग्यता होती है। भगवान के कारण से नहीं। नेमचन्दभाई! भगवान के कारण से?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब तो बहुत हुआ यह देखो न, जैनतत्त्व मीमांसा। समझ में आया?

भगवान का आत्मा जहाँ माता के गर्भ में (आया), उनका आत्मा अल्प भव में

मुक्ति पावे, ऐसा ही होता है। माता को भी धन्य है। पश्चात प्रभु! आपको जन्माभिषेक में ले गये, वह मेरु तीर्थपने को प्राप्त हुआ। इसलिए मैं तो ऐसा मानता हूँ कि ज्योतिषक के देव आपका जन्माभिषेक वहाँ हुआ, इसलिए उसकी प्रदक्षिणा दे रहे हैं। कहो, समझ में आया? ऐसे भक्ति के गुण में स्मृति में आने पर उनके गुणों के प्रति जब उल्लास आवे, इसलिए ऐसी भक्ति हुए बिना रहे नहीं। वहाँ से प्रभु जब आप यहाँ आये और जब क्रम से वैराग्य हुआ, वैराग्य हुआ। नीलांजनादेवी की आयुष्य की स्थिति पूरी होने पर आप सिंहासन में बैठे थे। आपने देखा कि ओहो! इस देवी की स्थिति पूरी हुई। यह सब विनश्वर है। ऐसा लक्ष्य करके आपने वैराग्य किया और इस संसार को छोड़ दिया।

इस संसार को छोड़ने पर, प्रभु! यह पृथ्वी, जब आपने सड़े हुए तृण समान पृथ्वी को जानकर और छोड़कर वीतराग वैराग्यरूप हुए, तब यह पृथ्वी नदी के बहाने कलकल करके विलाप करती है। नेमचन्दभाई! जहाँ हो वहाँ यह भक्ति देखते हैं। आपके विरह में पृथ्वी रुदन करती है, प्रभु! आपका विरह हमें पड़ा, पूर्ण सर्वज्ञदशा का हमको विरह और आप सर्वज्ञपद को प्राप्त, उसका व्यवहार से हमको विरह। समझ में आया? उसका हमको हे नाथ! खेद वर्तता है। अहो! ऐसे भरतक्षेत्र में जन्मे, उसमें हमारी पूर्ण दशा की प्राप्ति का हमको विरह है और यह पूर्ण प्राप्त पुरुष का भी हमको भरतक्षेत्र में वर्तमान में विरह पड़ा। इसलिए यह पृथ्वी विलाप करती है। प्रभु! हमें इसका खेद होता है। ओहोहो! कहो, समझ में आया? दुनिया की चीज़ नाश हो, ऐसा उसमें से हमें कुछ नहीं है। वह तो सब क्षणभंगुर है। समझ में आया? बाद में कहा था न कि इस प्रकार शकेन्द्र जब आपकी स्तुति में नृत्य करता था, हाथ चौड़े किये, वहाँ बादल टूट गये। खण्ड-खण्ड रहा, वह क्षणभंगुर रहा है। इसी प्रकार भगवान आत्मा राग और पुण्य के विकल्प की रुचि छोड़कर स्वभाव की दृष्टि करने पर वे कर्म बाकी (रहे), वह क्षणभंगुर नाशवान जैसे रहे।

पश्चात् (स्तुति) करते हुए (कहते हैं), नाथ! आपने चार घातिकर्म का नाश किया और सम्यक् केवलज्ञान को प्राप्त हुए। चार अघाति रहे, वे अब मुर्दे जैसे रहे हैं। उन्होंने जाना कि इन चार को बड़े योद्धा को मार डाला, हम किस हिसाब में? मुर्दे जैसे, जली हुई डोरीवत् अघातिकर्म पड़े हैं। यह अन्तिम यहाँ तक आया है।

२१वीं गाथा। अब समवसरण में भगवान विराजते हैं, उन्हें लक्ष्य कर भक्ति का विकल्प वर्णन करते हैं। भगवान समवसरण में पूर्व के पुण्य के कारण जो धर्मसभा इन्द्र आकर रचते हैं, उसका लक्ष्य करके, यह सिंहासन आदि पुण्य का फल और उसमें मुनि आदि विराजते हैं, उनके आप नायक और शोभा में सुन्दर शृंगार हो। इसके कारण मुनियों की-सबकी शोभा है। यह लक्ष्य कर बात करते हैं। २१ (गाथा)।

गाथा २१

णाणामणिणिम्माणे देव ट्ठिउं सहसि समवसरणम्मि।
उवरिव्व सण्णिवट्ठो जियाण जोईण सव्वाणं।।२१।।

अर्थ - हे जिनेश! हे प्रभो! जिस समवसरण की रचना चित्र-विचित्र मणियों से की गयी थी, उस समवसरण में जितने भी मुनि थे, उन समस्त मुनियों के ऊपर विराजमान आप अत्यन्त शोभा को प्राप्त होते थे।

गाथा - २१ पर प्रवचन

णाणामणिणिम्माणे देव ट्ठिउं सहसि समवसरणम्मि।
उवरिव्व सण्णिविट्ठो जियाण जोईण सव्वाणं।।२१।।

हे **जिनेश!** हे प्रभु! **जिस समवसरण की रचना चित्र-विचित्र मणियों से की गयी थी,...** सिंहासन। महा इन्द्र समवसरण-धर्मसभा रचते हैं। वह रच जाता है और इन्द्र कहता है, प्रभु! यह तो कोई आपका पुण्य ही रच डालता है। हमें ऐसी खबर नहीं, ऐसा यह रच जाता है। यह पूर्व के तीर्थंकर प्रकृति के पुण्य का उदय आया है, उस काल में वहाँ केवलज्ञान प्रगट हुआ है। दोनों साथ में हैं। इससे जहाँ इन्द्र ऐसी धर्मसभा रचते हैं... ओहोहो! आपका पुण्य भी क्या! और आपको पूर्ण आनन्ददशा की पवित्रता की प्राप्ति आश्चर्यजनक है। दोनों आश्चर्यजनक हैं। ऐसा वहाँ इन्द्र को भी लगता है।

कहते हैं **जिस (समवसरण) की रचना चित्र-विचित्र मणियों से की गयी**

थी,... ऐसा समवसरण। पूरा समवसरण। साधारण पुण्य के प्राणी को उनका समवसरण कैसा होता है, इसका ख्याल भी नहीं आता। कितने ही तो ऐसा कहते हैं कि यह सब शास्त्र में अतिशयोक्ति करके वर्णन किया है। आहाहा! अरे! तुझे खबर नहीं, भाई! जहाँ आत्मा का स्वरूप अन्तर के चैतन्य का खजाना, राग और ज्ञान की एकताबुद्धि तोड़कर आत्मा का भान हुआ, उसमें उस भूमिका में जो शुभराग होता है, उसमें उसे तीर्थंकर होने के योग्य जो द्रव्य हो, उसके पुण्य के परिणाम उसे जो आवें और उसके बन्धन में तीर्थंकर प्रकृति होने पर उसके फल की अतिशयता अत्यन्त प्रगट हुई।

समवसरण ऐसे... साधारण (लोग) कहे, नहीं, नहीं। यह तो ऐसा है और वैसा है। बहुत से लोग जैन सम्प्रदाय में जन्म कर भी ऐसे समवसरण आदि की विशेषता की अतिशयता श्रद्धा में नहीं लेते। वे तो सब एक अच्छे पुरुष हों और उनके सिर पर ऐसा हो, अच्छी कुर्सी पर बैठाया हो और सिर पर छत्र, धूप पड़ती हो और हिलते हों तो छत्र रखे, ऐसा भगवान को होगा। नरभेरामभाई! देखा नहीं, बापू! तूने आत्मा के चमत्कार देखे नहीं हैं। जिसके अन्तर्मुहूर्त में भगवान आत्मा अखण्डानन्द जागृत श्रद्धा-ज्ञान में जागृत हुआ, उसके पुण्य के परिणाम अनन्त काल में नहीं हुए, उस जाति के होते हैं और उसके पुण्य के बँधन में भी तीर्थंकर प्रकृति के परमाणु उसे अनन्त काल में उस पर्यायरूप परिणमे, ऐसा नहीं होता। और उसके फलरूप से ऐसे मणिरत्न से बना हुआ समवसरण। प्रभु! एक तो पुण्य का फल वर्णन किया।

दूसरा। आप जब समवसरण में विराजते थे, उसमें जितने मुनि थे। ओहोहो! सन्त, दिगम्बर मुनि आत्मध्यान में मस्त, असंख्य वर्ष के अन्तर से भी रहे हुए, उन्हें आचार्य महाराज ऐसे निकट—समीपता करते हैं। अभी तो भगवान तो मोक्ष पधारे हैं, परन्तु समवसरण की अस्ति की सत्ता की समीपता में जब मैं बैठा हूँ, ऐसा करके वर्णन कर रहे हैं। भगवान वे मुनि थे। उन **उन समस्त मुनियों के ऊपर विराजमान आप अत्यन्त शोभा को प्राप्त होते थे।** आपकी शोभा। इस प्रकार मुनियों का झुण्ड, गणधर, चार-चार ज्ञान के धनी। अन्तर्मुहूर्त में दिव्यध्वनि सुनकर बारह अंग की रचना करने की जिनकी ताकत, ऐसे सन्तों के झुण्ड महा अप्रतिहत दर्शन-ज्ञान-चारित्र को आराधन करनेवाले, ऐसे मुनियों के झुण्ड में प्रभु! आप ऐसे शोभते... ऐसे शोभते... आपकी सभा में तो यह ही होता है। समझ में आया?

यह गोला मारते हों न यह सब नहीं अन्दर? उस सभा में ऐसा हो। राजा के निकट यह सब मुख... इकट्ठे नहीं होते? नरभेरामभाई! यह साधारण हो और कोई पाँच, दस हजार, पचास हजार, लाख, दो लाख मिलते हों, वह राजा। उसके पास ... रची हुई हो। वह बात नहीं करती। रींगणा बहुत अच्छा। राजा को कहा न रींगणा अच्छा नहीं... रींगणा अच्छा नहीं... ऐसा राजा से कहा। तब सब दीवान उनकी मुख्य मण्डली हो और कहे, हाँ साहेब। दूसरे दिन कहा कि रींगणा अच्छा नहीं। उसमें बिगाड़ हो, उसमें जीवांत हो। कहे-हाँ, साहेब। आज कैसे यह? हम रींगणा के पिता के नौकर हैं? आप कहो, वैसा हम कहें। परन्तु किसका कहें? कुँवरजीभाई! यह सब मक्खन लगाते हैं, हों! मक्खन लगाते हैं। यह अमुक ऐसे है, हमारे राजा ऐसे, हमारे सेठ ऐसे, हमारे अमुक ऐसे। बाहर से मक्खन और अन्दर में समझते हों (कि) है बड़ा मूर्ख। वजुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उनका राजा तो होशियार (था)। परन्तु अन्त में वह मूर्ख हो गया, उसका मस्तिष्क घूम गया और ऐसा हो गया था। उसमें दस लाख का तालुका (तहसील)... गया वहाँ ऐसे आँख में से आँसू बह गये। हाय... हाय...! हो गया... गया। पराधीन... पराधीन। प्रभु! इन सन्तों के झुण्ड में आपकी शोभा, हों! वे यह मुखमण्डलीया और विकथा करनेवाले तथा पाप को माननेवाले मिथ्यादृष्टि जीव, उनकी सभा के आप नायक न हो... न हो। आपके साधक जीव, उनकी आपकी शोभा उससे शोभते थे कि वाह!

ऐसा कहते हैं कि हमारे साधक स्वरूप हम आत्मा के स्वरूप को साधते हैं, उसमें साध्य की शोभा पूर्णानन्द की प्राप्ति की शोभा है, उसे—साध्य के कारण यह साधकपना शोभता है। हेमचन्दभाई! देखो! यह मुनि स्तुति करते हैं। यह २१ (गाथा) हुई। २२ ।

गाथा २२

समवसरण में विराजमान सर्वज्ञ भगवान की स्तुति करते हुए मुनिराज कहते हैं कि-

लोउत्तरा वि सा समवसरणसोहा जिणेस तुह पाये।
लहिऊण लहइ महिमं रविणो णलिणिव्व।।२२।।

अर्थ - हे भगवन्! हे प्रभो! जिस प्रकार पुष्प में स्थित कमलिनी, सूर्य की किरणों को पाकर और भी अधिक महिमा को प्राप्त होती है, उसी प्रकार यद्यपि समवसरण की शोभा स्वभाव से ही लोकोत्तर होती है तो भी हे जिनेन्द्र! आपके चरण-कमलों को पाकर वह और भी अत्यन्त महिमा को धारण करती है।

भावार्थ - एक तो कमलिनी स्वभाव से ही अत्यन्त मनोहर होती है, किन्तु यदि वही कमलिनी सूर्य की किरणों को प्राप्त हो जावे तो और भी महिमा को प्राप्त होती है; उसी प्रकार समवसरण की शोभा, एक तो स्वभाव से ही लोकोत्तर, अर्थात् सबसे उत्तम होती है; और आपके चरणों के आश्रय को प्राप्त होकर वह और भी अत्यन्त महिमा को धारण करती है।

गाथा - २२ पर प्रवचन

लोउत्तरा वि सा समवसरणसोहा जिणेस तुह पाये।
लहिऊण लहइ महिमं रविणो णलिणिव्व।।२२।।

हे **भगवान!** हे प्रभु! **जिस प्रकार पुष्प में स्थित कमलिनी,...** यह पुष्प की बेल बड़ी। समझ में आया? **कमलिनी, सूर्य की किरणों को पाकर और भी अधिक महिमा को प्राप्त होती है,...** कमल की बेल हो और वह कमल खिला हो। उस खिलने में भी सूर्य की किरण निमित्त हो, तब वह कमल खिल निकलता है, ऐसा खिल निकलता है। सूर्य... कमल। **उसी प्रकार यद्यपि समवसरण की शोभा स्वभाव से ही लोकोत्तर होती है...** वह रचना अलौकिक! उस समय के परमाणु की पर्यायें, उन

भगवान के पुण्य का निमित्त और नैमित्तिक अवस्था का काल उसका वहाँ ही वह परिणमता है। यह उनके पुण्य का निमित्त है और वहाँ उपादान उस प्रकार से होने का है। पुण्यवन्त प्राणी मकान बनावे न? उस मकान की शोभा दूसरे प्रकार की होती है। और पापी का मकान बनावे, तब हमने ऐसा विचारा था, परन्तु यह अच्छा नहीं लगा, हों! यह भनकार उसमें आता है। इसमें ऐसा होता है... इसमें ऐसा होता है। उसके मकान में भी अन्तर पड़ता है। ऐसा कहते हैं, प्रभु! आपका पुण्य कोई ऐसा है कि जब समवसरण में आप विराजते थे तब... उसी प्रकार समवसरण की शोभा यद्यपि स्वभाव से ही थी। कमल तो स्वयं से ही खिला हुआ होता है परन्तु सूर्य की किरण पाने पर अधिक खिलावट होती है। उसी प्रकार समवसरण की शोभा तो सहज ही थी, परन्तु आपके विराजमान (होने से) अधिक शोभा है। ओहोहो! देखो! यह पुण्य और पुण्य का काल जब ऐसा बँधा हुआ, उस समय उसका स्वभाव क्या? ऐसे स्वभाव की अस्तिपूर्वक उसे प्रतीति में लेकर यह भक्ति करते हैं। खबर नहीं होती भगवान कौन, अरिहन्त कौन? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं न, प्रवचनसार ८०वीं गाथा में।

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्संलयं।।८०।।

जो कोई आत्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा का आत्मा क्या? उनका गुण क्या? और उनकी वर्तमान अवस्था क्या? दशा क्या? उसका वास्तविक स्वरूप जाने और उनकी व्यंजन आकृति पर्याय इत्यादि क्या? उसे बराबर जाने और उसे जाने, वैसी तुलना करनेवाला मैं आत्मा हूँ। ऐसा ही मैं आत्मा हूँ। इस प्रकार आत्मा के साथ तुलना करे— मिलान करे। मिंढवे समझते हो? नेमिचन्दजी! मिंढवे यह हमारी काठियावाड़ी भाषा है। मिलान करे, मिलान। ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा थे, उनका द्रव्य, गुण की खान। उनके गुण अचिन्त्य-अचिन्त्य शक्ति का भण्डार, उनकी पर्याय पूर्ण निर्मल हुई और उनका आकार शरीर परमौदारिक प्रमाण था और उनके समवसरण की शोभा अत्यन्त अलौकिक! ऐसा जो ज्ञान करे, वह आत्मा के साथ मिलान करे, उसे सम्यग्दर्शन और क्षायिक सम्यक्त्व हुए बिना रहता नहीं। ऐसा ही मैं आत्मा हूँ।

ऐसा कहते हैं कि प्रभु! समवसरण की शोभा तो महान अचिन्त्य थी। लोकोत्तर

ही होती है। तो भी हे जिनेन्द्र! **आपके चरण-कमलों को पाकर वह और भी अत्यन्त महिमा को धारण करती है।** २३ (गाथा)

गाथा २३

णिद्दोसो अकलंको अजडो चंदोव्व सहसि तं तहवि।
सीहासणायलत्थो जिणंद कयकुवलयाणंदो।।२३।।

अर्थ - हे जिनेन्द्र! हे प्रभो! आप यद्यपि निर्दोष, अकलंक और अजड़ हैं तो भी अचल सिंहासन में स्थित तथा कुवलय को आनन्दित करनेवाले ऐसे आप चन्द्रमा के समान शोभित होते हैं।

भावार्थ - हे जिनेन्द्र! आप तो निर्दोष हैं और चन्द्रमा, दोष (रात्रि) से सहित है, अर्थात् सदोष है। आप तो कर्म-कलंक से रहित हैं, किन्तु चन्द्रमा, कलंक से सहित है। आप तो जड़ता-रहित हैं, किन्तु चन्द्रमा, जड़ता से सहित है। इस प्रकार आप और चन्द्रमा में भेद है, परन्तु जिस प्रकार चन्द्रमा, पर्वत के शिखर पर स्थित रहता है और रात्रि-विकासी कमलों को आनन्द का देनेवाला है, इसलिए शोभा को प्राप्त होता है; उसी प्रकार पर्वत के समान आप भी सिंहासन पर स्थित थे तथा आपने समस्त पृथ्वी-मण्डल को आनन्द दिया था, इसलिए आप भी चन्द्रमा के समान ही शोभित होते थे।

गाथा - २३ पर प्रवचन

णिद्दोसो अकलंको अजडो चंदोव्व सहसि तं तहवि।
सीहासणायलत्थो जिणंद कयकुवलयाणंदो।।२३।।

भावार्थ में भी यही है। आपके चरणकमल ऐसे विराजमान हुए (तो) शोभा बढ़ गयी। शोभा समवसरण की बढ़ी। ओहोहो! प्रभु! इसी प्रकार आत्मा अपने निज रूप को प्रकाशित करे, श्रद्धा करे, पहिचाने, उस समय के पुण्य की शोभा भी अलग है। उसके पुण्य के फल की शोभा भगवान आचार्यदेव कहते हैं, धर्मी जीव का पुण्य ऐसा होता है

कि उस पुण्य के फलरूप से जहाँ जन्मे, उसे लक्ष्मी आदि के साधन कहीं से खोजने— शोधने नहीं पड़ते। यह तो पहले आ गया था न? लक्ष्मी हमारे सामने दौड़ती आज्ञा माँगे। प्रभु! आपकी भक्ति करे, उसे लक्ष्मी तो दौड़ती सामने आज्ञा माँगती हुई चली आती है। यह झपट्टे और झपट्टे डालता है न जहाँ-तहाँ। जलसा उड़ाना और यह करना और किसी प्रकार से हमको मान दे, हम बड़प्पन में गिने जायें, हमें लक्ष्मी की गिनती में, श्रीमन्त के अंक की गिनती में बैठक में गिने जायें, इसके लिये झपट्टा मारता है। झांवा, समझ में आया? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : वलखा डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : वलखा तो अभी अपनी भाषा है, वह की वह वापस। झपट्टा। ऐसा करूँ... ऐसा करूँ... ऐसा करूँ... धर्मी अपने स्वतन्त्र स्वभाव को जिसने साधा है, उसके पुण्य को भी स्वतन्त्र और उसे सत्पुण्य कहा जाता है। उसके फल की शोभा... प्रभु! उसे तो पुण्य था परन्तु आपके ज्ञान और आनन्द का निमित्त मिला, इससे उसकी शोभा बढ़ गयी। कहो, समझ में आया? २३।

हे जिनेन्द्र! हे प्रभु! आप... अब चन्द्रमा के साथ भगवान को मिलान करते हैं। सब ऊँची-ऊँची चीजें सब हल्की (लगती है) प्रभु आपके समक्ष। समझ में आया? आप ही सबमें शोभायमान और अधिक रूप से विराजते हो। हे जिनेन्द्र! **आप तो निर्दोष हैं और चन्द्रमा, दोष (रात्रि) से सहित है,...** दोष अर्थात् रात्रि में ही चन्द्र होता है। आप तो रात और दिन सदा ही प्रकाशमान हो। चन्द्र के साथ आपको उपमा देना, वह भी आपको शोभती नहीं। कहो, समझ में आया?

आप तो निर्दोष हैं और चन्द्रमा, दोष (रात्रि) से सहित है, अर्थात् सदोष है। आप तो कर्म-कलंक से रहित हैं, किन्तु चन्द्रमा, कलंक से सहित है। है और दिखता है न वह हिरण आदि का चिह्न नहीं दिखता? चन्द्रमा में हिरण आदि का चिह्न दिखता है न? कहते हैं, उसमें तो कलंक है, प्रभु! उसकी उपमा आपको क्या दूँ? आप तो निष्कलंक अखण्डानन्द प्रभु निर्मल इष्ट परिणति से परिणम रहे हो। आपको तो अनिष्ट ऐसे विकारों का तो व्यय अर्थात् सर्वथा नाश हो गया है। इसलिए चन्द्रमा की उपमा भी आपको शोभा नहीं देती।

चन्द्रमा, कलंक से सहित है। आप तो जड़ता-रहित हैं,... चन्द्र तो जड़ परमाणु है, उनकी पर्याय है। आपमें जड़ता नहीं है। वह तो जड़ता सहित है। **किन्तु चन्द्रमा, जड़ता से सहित है।** जड़ है न? परमाणु है या नहीं? **इस प्रकार आप और चन्द्रमा में भेद है,...** जुदाई है, एकता नहीं है। **परन्तु जिस प्रकार चन्द्रमा, पर्वत के शिखर पर स्थित रहता है...** उगता है न तब। **और रात्रि-विकासी कमलों को आनन्द का देनेवाला है,...** आनन्द देता है अर्थात? खिलता है। रात्रि विकसित कमल होते हैं, वह चन्द्र हो, तब खिलते हैं। सूर्य हों तब (मुँद जाते हैं)। और सूर्यविकासी कमल सूर्य के काल में खिलते हैं, चन्द्र के काल में बन्द हो जाते हैं। भगवान! आप तो सूर्यविकासी कमल को आनन्द देनेवाले। चन्द्र वह विकासी कमल को आनन्द देनेवाले के लिये खिल निकलता है ऐसा। प्रफुल्लित, प्रफुल्लित है ऐसा। **इसलिए शोभा को प्राप्त होता है;...**

उसी प्रकार पर्वत के समान आप भी सिंहासन पर स्थित थे... पूरा समवसरण, उसमें गन्धकुटि और उसमें सिंहासन, उनके ऊपर ऐसे भगवान निरालम्बी विराजते हैं। **तथा आपने समस्त पृथ्वी-मण्डल को आनन्द दिया था,...** लो! क्या कहा? चन्द्रमा ने तो उन्हें-कमल को आनन्द दिया। आनन्द अर्थात् विकसित हुए। भगवान! आपने तो बहुत प्राणियों को खिला दिया। बहुत प्राणियों का उद्धार और खिला दिया। यद्यपि खिलने की ताकत तो उनसे है। यहाँ निमित्त से वर्णन किया है। आप जहाँ सूर्य समान उदित हुए (तो) बहुत खिल गये।

आपके उदित होने के बाद १८ क्रोडाक्रोडी सागरोपम में इस भरतक्षेत्र में नरक में जानेवाले मनुष्य नहीं थे। समझ में आया? इस भरतक्षेत्र में अठारह क्रोडाक्रोड़ी सागरोपम में कोई नरक में जानेवाले नहीं थे, मोक्ष में जानेवाले नहीं थे, एकेन्द्रिय में जानेवाले नहीं थे, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, मनुष्य में मरकर जानेवाले नहीं थे। वे देव में जानेवाले थे। परन्तु जहाँ भगवान की वाणी खिरी, तब विपरीत पड़े हुए को नरक, निगोद के भाव आये और नरक-निगोद की तैयारी कर रहे। उसमें निमित्त आप हो, ऐसा हम कहते ही नहीं, कहते हैं। समझ में आया?

यह विपरीत पड़ा हो न, तब सच्ची बात बाहर आवे, तब खलबलाहट... खलबलाहट... विपरीत पड़े। पहले ऐसा और ऐसा पड़ा हो, वह अधिक उलटा पड़े।

वह इनके निमित्त से उलटा नहीं, वह तो उसकी विपरीतता के कारण से ही उलटा पड़ा है। यहाँ भगवान की वाणी निकली, अठारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम में चौबीस दण्डक और पच्चीस में मुक्ति, एक देव में जाने की स्थिति थी। जहाँ वाणी निकली तो कोई कहीं और कोई कहीं और कोई कहीं। कोई नरक में गये, कोई निगोद में गये, कोई (किसी को) मोक्ष हुआ, कोई मनुष्यपने में गये, तिर्यंच में गये, कोई विकलेन्द्रिय में गये। नरभेरामभाई! क्या कहा?

मुमुक्षु : भगवान की वाणी सुनने के पश्चात् यह सब हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पश्चात् यह सब हुआ। पहले नहीं था। यह नहीं। प्रभु! आप उसमें निमित्त नहीं कहलाते। आपके कारण से तो भव्य जीवों के हृदय कमल खिल गये। आपने जहाँ धोधमार चैतन्य के स्वभाव की महिमा का वर्णन किया, खजाना खोलकर जगत को बताया, भगवान किसी के हृदयकमल खिल गये। कोई खिल गये। ऐसे आप उसमें निमित्त हुए हो। उनसे खिल गये। खिल गये, समझते हो? प्रगट हो गया। कहो, समझ में आया?

तथा आपने समस्त पृथ्वी-मण्डल को आनन्द दिया था,... आनन्द ही दिया था। आत्माएँ अतीन्द्रिय आनन्द के आकांक्षी-जिज्ञासु थे, उन्हें आपने आनन्द दिया। आपने आनन्द दिया। यह तो नमोत्थुणं में नहीं आता? जीव दयाणं बोहि दयाणं—आता है या नहीं? नरभेरामभाई! नमोत्थुणं पाठ में। जीव दयाणं। हे नाथ! हमें आपने जीव दिया। ऐसा कहते हैं। श्रीमद् में भी आता है या नहीं? 'वह तो प्रभु ने दिया' हमें आत्मा दिया। जिसे आत्मा का भान होने में जो निमित्त है, उस पर आरोप से (ऐसा कहा जाता है कि) प्रभु! हमें तो आत्मा दिया न। हम पागल थे, पागल थे। हमें आत्मा समझाया, आत्मा जगाया। आपने तो पूरा आत्मा हमें दिया। हमें कैसे खाना, कैसे पीना, कैसे बोलना कुछ खबर नहीं थी। हमें कैसे ज्ञान की विचिक्षणता, क्या कुछ खबर नहीं थी। आपने ही हमें पूरा आत्मा दिया। ऐसा नमोत्थुणं में यह आता है। जीव दयाणं। जीव का दातार भगवान है। बोधि के दातार भगवान है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी बोधि के भगवान दातार हैं। उनके पास देने की चीज़ यह है। कहो, समझ में आया?

अष्टपाहुड़ में आता है। प्रभु! आप तो देव हो न! देव तो दे, उसे देव कहते हैं।

क्या दिया ? आप तो हमें चारों ही देते हो। हमें पैसा देते हो, काम भी हमें देते हो, पुण्य भी हमें देते हो और मोक्ष भी देते हो। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। एक बार कुन्दकुन्दाचार्य कहे कि भगवान की भक्ति के विकल्प से भी चैतन्य को शान्ति नहीं मिलती। वह तो स्वाधीन से मिलती है। परन्तु निमित्त की व्याख्या करते हुए प्रभु! आपको जब पहिचाना, इसलिए हमारा भान हमें हुआ, तब हमें मोक्ष प्राप्त होने की भी तैयारी हो गयी, हमें धर्म का साधन भी हुआ। पुण्य भी हमको अलौकिक हुआ और उस पुण्य में अर्थ और काम जो मिलेंगे, ऐसे अर्थ और काम आपकी भक्ति से पहले अनन्त काल में कभी नहीं मिले थे, ऐसे मिलेंगे। वजुभाई! भगवान देते हैं। इसमें कहा न, देखो न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु हाथ फैलावे, ऐसा कहे कि अन्नदाता! आप दो... आप दो... हमें दो। वास्तव में तो सम्प्रदान तो अपनी पर्याय का स्वयं करके अपने को देता है। परन्तु निमित्त में, हे नाथ! आप तो चार प्रकार के—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों ही पुरुषार्थ के दाता हो। पुण्यरूप से धर्म, अर्थ और काम तथा मोक्ष आत्मा का पुरुषार्थ। चारों के आप दातार हैं। निश्चय और व्यवहारदशा दोनों को समझानेवाले आप हैं, इसलिए दोनों के आप ही दातार हैं। कहो, समझ में आया ? देखो! यह सर्वज्ञदेव के अतिरिक्त दूसरे देव सच्चे नहीं हैं और वह देव ही स्वयं चार देने में या निमित्त होने में समर्थ है, दूसरे तो लक्ष्मी देने में भी समर्थ नहीं। लो! ओहोहो! लक्ष्मी तो कैसी ? काम भी, उसके भोग कैसे ? और उसका पुण्य भी कैसा ? यह तो स्वभाव की भूमिका में बँधता है। अलौकिक रीति से आपने दिया, ऐसा हम कहते हैं। हजारीमलजी! क्या कहते हैं। उत्तमचन्दभाई! भगवान देते हैं। अष्टपाहुड़ में (कहा है)। देने का अर्थ निमित्त का कथन है। आपका निमित्त और आपका ज्ञान जब हमने हमारे में किया, ये चारों बोल ऐसे प्रगट हुए कि अनन्त काल में यह अर्थ और काम और धर्म अर्थात् पुण्य ऐसा था ही नहीं हमारे पास। बराबर है ? वजुभाई! ओहोहो! आनन्द देनेवाले।

इसलिए आप भी चन्द्रमा के समान ही शोभित होते थे। शोभायमान हो। शोभायमान होते थे। २४ (गाथा)

गाथा २४

अच्छंतु ताव इयरा फुरियविवेया णमंतसिरसिहरा।
होइ असोहो रुक्खो वि णाह तुह संणिहाणत्थो।।२४।।

अर्थ - आचार्य कहते हैं कि हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! जिन भव्य जीवों के ज्ञान की ज्योति स्फुरायमान है और जो आपको मस्तक झुका कर नमस्कार करते हैं, वे तो दूर ही रहें, किन्तु हे भगवान! आपके समीप रहा हुआ जड़ वृक्ष भी अशोक हो जाता है।

भावार्थ - हे जिनेश! जिनको ज्ञान मौजूद है, अर्थात् जो ज्ञानी हैं तथा आपको मस्तक झुकाकर नमस्कार करनेवाले हैं - ऐसे भव्य जीव आपके पास में रहकर तथा आपका उपदेश सुनकर शोकरहित हो जाते हैं, इसमें तो कोई आश्चर्य नहीं, किन्तु जो वृक्ष जड़ है, वह भी केवल आपके समीप में रहा हुआ ही अशोक हो जाता है; यह महान आश्चर्य है।

गाथा - २४ पर प्रवचन

अच्छंतु ताव इयरा फुरियविवेया णमंतसिरसिहरा।
होइ असोहो रुक्खो वि णाह तुह संणिहाणत्थो।।२४।।

ओहो! आचार्य कहते हैं, अब इस प्रातिहार्य को लक्ष्य करके स्तुति करते हैं। भगवान को आठ प्रातिहार्य—अतिशय पुण्य की शोभा आठ होती है न? उसमें पहला अशोक वृक्ष लेते हैं। कहो, समझ में आया? अशोक—अशोक। हे भगवान!

मुमुक्षु : अशोक हैं न भगवान?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान अशोक हैं। शोकरहित, रागरहित वीतराग, उनका पहला प्रातिहार्य अशोकवृक्ष है। कहो, समझ में आया?

आचार्य कहते हैं कि हे प्रभु! **हे जिनेन्द्र! जिन भव्य जीवों के ज्ञान की ज्योति स्फुरायमान है और जो आपको मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं,...** क्या कहते हैं? जो आत्मायें चैतन्यस्वरूप से जागृत होकर आपको पहिचाना, ऐसे जो चैतन्य के

जागनेवाले, समझनेवाले आपको नमस्कार करते हैं, वे तो चैतन्य होकर वीतराग होते हैं। **वे (भव्य जीव) तो दूर ही रहें,...** उनकी तो क्या बात करना? परन्तु चैतन्य सर्वज्ञपद को... श्रीमद् कहते हैं न कि सर्वज्ञ को भी कोई अपूर्व भाव से जाना हो तो उसने सर्वज्ञ जाना कहलाता है। नहीं तो सर्वज्ञ जाने हैं, ऐसा नहीं कहलाता। स्वसंवेदनज्ञान की ताकत है कि अल्प समय में वह सर्वज्ञ होगा और सर्वज्ञ मेरा स्वभाव है। व्यवहार-फ्यवहार सब निषेध है। दृष्टि में राग और पुण्य और निमित्त का अवलम्बन तथा उनका आश्रय नहीं होता। ऐसा जिसे भान (हुआ है), वह आपको नमस्कार करे, वह तो क्या बात करना? उसका पुण्य और उसकी पवित्रतावाला मनुष्य आत्मा नमस्कार (करे), उसे क्या कहें?

किन्तु हे भगवान! आपके समीप रहा हुआ जड़ वृक्ष भी अशोक हो जाता है। अशोक वृक्ष आया न? अशोकवृक्ष। कहो, ईश्वरचन्दजी! ईश्वर। है न तुम्हारा अशोक? उसे कहा, आज अशोकवृक्ष का आयेगा। अशोक। प्रभु! आपको भव्य जीव आत्मा की चैतन्य महिमा को समझकर ऐसा जो आपको नमन करती है, अन्तर में नमन करते हैं और आपको भी नमन करते हैं, उनकी तो क्या बात करना? उसे तो हम दूर रखते हैं। परन्तु आपके समीप अशोकवृक्ष जो वृक्ष है, जड़ वृक्ष भी आपके समीप अशोकपने की उपमा को पाता है, तो जो चैतन्य जागृतवाले आपकी सेवा करें, उसे वीतरागता और केवलज्ञान हो, इसमें कुछ नवीनता नहीं है। कहो, समझ में आया? यह सब भक्ति में तो अभी व्यवहार की ही बात आवे न?

निश्चय में उपादान से कार्य होता है, निमित्त तो उपस्थितमात्र है। समझ में आया? कथन से व्यवहार से आवे, तब तो यही बात है। उपादान से ही कार्य है। उसमें कार्य कहीं निमित्त से नहीं होता, परन्तु निमित्त के प्रभाव में भक्ति का उल्लास आया है, इसलिए भक्तों के ऐसे ही वचन निकलते हैं। निकलते हैं ऐसे (कि) आपने ही तारा, जगत से उभारा। इस चौरासी के परिभ्रमण आपसे नष्ट हुए, प्रभु! आप नहीं मिले होते तो हम कहीं चौरासी लाख में भटकते। ऐसा कहे। कहो, समझ में आया? विनय है, विनय है।

कहते हैं, प्रभु! सम्यग्ज्ञान को प्राप्त भव्य जीव की तो क्या बात करना? आपको

नमस्कार करे, उसे फिर इन्द्र नमस्कार करेंगे। वह नमस्करणीय हो जाएगा। परन्तु अशोकवृक्ष... प्रभु! यह जड़ वृक्ष आपके निकट आया और आपके सिर पर रहता है (तो) वह भी अशोक हो गया। उसका नाम भी अशोक आपके कारण रखा गया है। कहाँ गये धन्नालालजी? समझ में आया? ओहोहो! यह पुण्य के परिणाम भी अलग प्रकार के कहते हैं। आपके समीप में, चैतन्य के समीप में आकर विकल्प उठा, वह पुण्य परिणाम भी अलग जाति के हैं। उसे प्राप्त शरीर भी... भविष्य में, हों! आराधक होने के बाद, उसके शरीर के रजकणों की अवस्था भी अनन्त काल में नहीं हुई ऐसी होनेवाली। अनन्त काल में नहीं हुई, (ऐसी) होनेवाली है। उसकी वाणी भी अलग, उसका कुल अलग, उसकी कीर्ति अलग, उसकी निरोगता आदि बहुत बोल आते हैं न शास्त्र में।

आराधक पुण्य के धनी जब जाते हैं। अवतरित होते हैं, तब उन्हें कीर्ति, कुल, इज्जत इत्यादि साधन वहाँ सम्पन्न होते हैं। उन्हें सहज होते हैं। उन्हें मिलाने नहीं पड़ते। इसी प्रकार भगवान यहाँ कहते हैं, प्रभु! वृक्ष जड़पना जो है, वह अशोकपने को प्राप्त करे तो हम तो चैतन्य हैं, हों! आपके समीप चले आते हैं। चले आते हुए हम वीतराग हो जानेवाले हैं। किसकी समीपता होगी? यहाँ समीपता है, वह भगवान की समीपता का आरोप करके भक्त (कहते हैं), प्रभु! आपने तो मुक्ति दी न हमें। और यहाँ तक भक्त बोलते हैं—प्रभु! आप मुक्ति की अपेक्षा आपकी भक्ति हमारे बढ़ जाती है। नेमचन्दभाई! आता है न स्तुति में? 'मुक्ति की अपेक्षा हमारे तो भक्ति अधिक है।' अर्थात? भक्ति तो निश्चय की है। परन्तु अभी विकल्प उठा है, आपके ऊपर लक्ष्य (जाता है), यह उसकी मुख्यता व्यवहार से हो गयी। परमार्थ से तो हमारी मुख्यता हमारी मुक्ति हमारे आश्रय से होती है। आरोप करके भक्त विकल्प में (ऐसा कहते हैं), आपने तारा, उद्धार किया, भटकते रखा, भटकते रखा अर्थात्? भटकते रखा इसके दो अर्थ होते हैं। भटकते रखा। रखड़ता, समझते हो? रुलता है न? रखा अर्थात् बन्द किया। रखा नहीं। भटकते अवतार चौरासी के अवतार में प्रभु ओहोहो! इस वस्तु की पहिचान और इस चैतन्य की जाति को बतलाया, आपसे तिर गये। प्रभु! वृक्ष अशोकपने को प्राप्त हो तो हम वीतरागपने को पायेंगे, इसमें कोई नवीनता नहीं है। यह राग की याचना नहीं की, हों! राग होकर हमें ऐसा होवे। हम तो वीतरागपने को पाते हैं। हमारा स्वभाव वीतराग, उसके समीप जाएँगे। हम वीतरागपने को प्राप्त करेंगे।

हे जिनेन्द्र! जिनको ज्ञान मौजूद है, अर्थात् जो ज्ञानी हैं तथा आपको मस्तक झुकाकर नमस्कार करनेवाले हैं... झुकाकर ऐसे। मस्तक झुकाना और यह सब निमित्त के कथन हैं, हों! मस्तक झुकाने का अर्थ अन्दर कोमलता वर्तती है। मस्तक ऐसे झुकना या न झुकना, वह आत्मा के विकल्प के आधीन नहीं है। आहाहा! ऐसे कथन आवे न, और मनुष्य उसके अर्थ समझे नहीं और गड़बड़ करे। सिर जड़ है, यह तो मिट्टी है। अनन्त परमाणु का पिण्ड है। उसका परिणमन तो उसके कारण से स्वतन्त्र है। आत्मा नमन करने का विकल्प करे, इसलिए नमता है—ऐसा है नहीं। परन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध में जब ऐसा विनय है, तब शरीर का—मस्तक का नमन भी होता है, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के कारण भक्त ऐसा कहते हैं कि प्रभु! भव्य जीव जब आपको नमस्कार करे... ओहोहो! ... लोगों की भक्ति। स्त्री के लिये यदि प्रसन्न करने बाहर परदेश में गया हो और कोई दो महीने, चार महीने में आवे तो सब इकट्ठे होते हैं कि कुछ लाये। कुँवरजीभाई! सब लड़के इकट्ठे हों, बापू! क्या लाये हो हमारे लिये। घड़ी लाये? अमुक लाये? साड़ी लाये?

एक जगह... बात थी। सरपदल है न सरपदल? वहाँ गये थे। सामने मकान था। मालिक आया हुआ और स्त्री के लिये साड़ी लेकर आया। ऐसे दरवाजा खोला (और पूछा) आये। कुछ लाये? ठीक! कुछ लाये या नहीं हमारे लिये? छह महीने बाहर गये हुए, भटककर आये, अमुक, अमुक, कोई परदेश में। लड़के के लिये पेड़ा लावे, उसके लिये साड़ी लावे, उसके लिये कुछ लावे।

भगवान के पास जानेवाले, ऐ आया यहाँ? क्या लाया? ओय, यह कहाँ उतारा वापस? नरभेरामभाई! भक्ति भेंट लाया? ऐसा कहते हैं। उसमें नहीं आता? आता है न कहीं? भक्ति भेंट ले आया। प्रभु भक्ति। यह भेंट लेकर आया हूँ। ओहोहो! ऐसा अविकारी वीतरागस्वभाव और आप ही हमारे वात्सल्य करनेवाले। आ गया है न पहले? सकल जीव पर प्रभु आपका वात्सल्य (वर्तता है)। ओहोहो! जैसे गाय उसके बछड़े अथवा बछड़ी के प्रति प्रेम करती है न! प्रभु! हम तो आपके बच्चे हैं। आप गाय समान हो। आप हमारे प्रति वात्सल्य करनेवाले हो। ओहोहो! हजारीमलजी! और वात्सल्य भगवान को कहाँ से आया? अकषाय करुणा, अकषाय करुणा। ओहोहो! 'करुणा हम पावत है

तुमकी बात रही गुरुगम की।' करुणा अर्थात् केवलज्ञान में, आपके केवलज्ञान में भासित हुआ कि यह प्राणी एकावतारी अल्प भव में मुक्ति जानेवाला है। प्रभु! यह आपकी करुणा हमारे ऊपर वर्तती है। भगवानजीभाई! ओहो! हमारे ऊपर करुणा वर्तती है।

आपके केवलज्ञान का प्रपात, हमें वाणी द्वारा जब आपने समझाया, वह हमें करुणा हमारे आत्मा पर हुई। आपकी करुणा थी तो करुणा हुई, ऐसा भक्त भगवान को कहते हैं। गणधरों की भी ऐसी वाणी निकलती है। ... आहाहा! आपके विरह में हम भटके, आपके समीप में आये। हम एकावतारी अथवा एक भव में, इसी भव में पूर्णानन्द की प्राप्ति करके मुक्ति को प्राप्त करेंगे।

यहाँ कहते हैं, **ऐसा करनेवाले हैं–ऐसे भव्य जीव आपके पास में रहकर तथा आपका उपदेश सुनकर शोकरहित हो जाते हैं,...** शोकरहित हो जाए। क्योंकि आपकी वाणी वीतराग होने की है। क्या कहा? यह भी न्याय डाला इसमें। आपकी वाणी में वीतरागता नितरती है। कहीं राग करना या राग टालना, ऐसा स्वरूप में नहीं है। वीतरागता नितरती है। अशोकपना नितरता है, वीतरागता नितरती है। कहा नहीं?

वचनामृत वीतराग के परम शान्त रसमूल,
औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।

कायर को ऐसे हाय... हाय... आया था न? भाई! ... नहीं आया था उसमें? वाणी सत् की सुनकर कितने ही भड़कते हैं। भड़कते हैं। उपादान से कार्य होता है, निश्चय से मोक्षमार्ग होता है; विकल्प आवे, वह बन्धमार्ग है। व्यवहार के आश्रय से तीन काल में दया, दान, व्रत, भक्ति, जप, तप के राग से मुक्ति नहीं, आश्रय नहीं। वास्तव में वह कारण भी नहीं। सुनकर ऐसे भैंस को देखकर ऊँट भड़के। भैंस कहते हैं न? भैंस को देखकर ऊँट भड़के। इसी प्रकार सुनकर भड़कते हैं। अभी लिखा था, उसमें आया था। ... यह क्या? यह क्या? यह क्या? सुन न अब। भड़कता क्या है? शरीर की क्रिया धूल की कहीं रह गयी, वह तो जड़ में है। कितने ही तो ऐसा कहते हैं पण्डित (नाम) धराकर, लो! यह सोनगढ़िया तो कहते हैं कि यह हाथ ऐसे हो, भगवान की (भक्ति में), शरीर से तो धर्म भी नहीं होता और पुण्य भी नहीं होता। बात उनकी सत्य है। ऐसा ही कहा जाता है और ऐसा ही है। भगवान ऐसा कहते हैं। यहाँ नहीं कहते?

देखो न। कहो, समझ में आया? आप तो। **आपका उपदेश सुनकर शोरहित हो जाते हैं,...** अर्थात् क्या कहा? उपदेश में क्या आया था? उपेक्षा पुण्य की-व्यवहार की, निमित्त की उपेक्षा कर, स्वभाव की अपेक्षा कर। चौदह पूर्व की वाणी के बारह अंग में यही उपदेश है।

भगवान! आपके उपदेश को पाकर जीव अशोक हो जाते हैं, तो जैसा उपदेश में था, वैसा अन्दर प्रयोग में लाये, तब उसके फलरूप वीतरागता आ जाती है।...चन्दभाई! राग रखने का होगा उपदेश में? वह भगवान का उपदेश नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आपके उपदेश में तो वीतरागता, अविकारता, अकषायता, स्वाभाविक शुद्धि की पवित्रता कैसे प्रगट हो, यही बात नितर रही है। अशोक—शोकरहित होता है।

इसमें तो कोई आश्चर्य नहीं, किन्तु जो वृक्ष जड़ है, वह भी केवल आपके समीप में रहा हुआ ही अशोक हो जाता है;... अशोक तो है। परन्तु अलंकार से ऐसे वीतरागता तैरती है न दृष्टि में? भगवान की पूर्ण वीतरागता भी साध्य में, लक्ष्य में ली है इसलिए वृक्ष को भी कहते हैं कि तू भी अशोक है। जा। वीतरागता लागू पड़े। तुझे भी वीतरागता लागू पड़ती है। कहो, समझ में आया इसमें? **यह महान आश्चर्य है। आपके समीप में रहा हुआ ही अशोक हो जाता है; यह महान आश्चर्य है।** २५।

गाथा २५

छत्तत्तयमालंबिय णिम्मल मुत्ताहलच्छला तुज्झ।
जणलोयणेसु वरिसइ अमयं पि व णाह बिंदूहिं।।२५।।

अर्थ - हे भगवन्! हे नाथ! आपके जो ये तीनो छत्र हैं, वे लटकते हुए निर्मल मुक्ताफल के ब्याज से मनुष्यों की आँखों में बिन्दुओं (अश्रुओं) से अमृत की वर्षा करते हैं - ऐसा मालूम होता है।

भावार्थ - हे भगवन्! जिस समय भव्य जीव आपके छत्र को देखते हैं, उस समय उनको इतना आनन्द होता है कि आनन्द के मारे उनकी आँखों से अश्रुपात होने लगता है।

गाथा - २५ पर प्रवचन

छत्तत्तयमालंबिय णिम्मल मुत्ताहलच्छला तुज्झ।
जणलोयणेसु वरिसइ अमयं पि व णाह बिंदूहिं।।२५।।

अब छत्र। छत्र-छत्र। भगवान सर्वज्ञपद को पावे तीर्थंकरदेव, वहाँ वे विराजमान होते हैं, उनके ऊपर तीन छत्र होते हैं। यह अतिशयोक्ति नहीं है, हों! परन्तु यह अतिशयता है। ऐसे तीन छत्र हैं। मुक्ताफल के हार जैसे मानो ऐसे दिखते हों सिर पर। उन्हें कुछ नहीं, हों! वे तो वीतराग हैं। उनके शरीर को स्पर्श नहीं करते। शरीर नीचे स्पर्श नहीं करता और ऊपर भी स्पर्श नहीं करता। नीचे सिंहासन को स्पर्श नहीं करता, ऊपर छत्र को स्पर्श नहीं करता। बीच में शरीर ऐसे निरालम्बन स्थित होता है। ओहोहो! सिंहासन से ऊपर चार अंगुल। उसके (छत्र के) ऊपर से नीचे। समझ में आया? वे अन्तरीक्ष में हैं न? भगवान ऐसे ऊपर रहते हैं। यह अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ। अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ न? गये थे न वहाँ? वे कहें कि यह ऊपर है। भाई! देखने दो नीचे। नीचे तीन जगह स्पर्शित है, कहा। अपने को भाई बात बैठती नहीं। ऐसे... बातें बहुत करना... समझे न? जैसा हो, वैसा उसे जानना चाहिए। अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ भगवान है न, हम गये थे। तीन जगह स्पर्शित है। एक जगह जरा नहीं था, इसलिए होवे वैसा, उसमें क्या? रखा हो। तो कहे, पहले ऊँची थी। अब पहले ऊँची, यह हमारे निर्णय कैसे करना अभी? पहले ऊँची थी। लोग मिथ्या कल्पना के अतिशय मूर्ति को लगाते हैं। ऐसा यह नहीं है। वजुभाई! थे या नहीं तुम? यह वह वस्त्र... निकालनेवाले निकालें, ऐसे आहिस्ता से उस ओर से निकाले। देखो! यह नीचे से वस्त्र निकल गया। उस ओर नीचे वह हो, वहाँ वस्त्र न रखे और ऐसे करे तो निकल गया। निकला। वस्तुस्थिति तो जैसी हो, उसमें तो कोई अतिशय मिथ्या भी कल्पित करते हैं। यह अतिशय मिथ्या नहीं है, यह तो वस्तु की स्थिति है।

तब कोई कहे कि भगवान वीतराग, पूर्ण वीतराग, उनको और छत्र क्या? उन्हें सिंहासन क्या? उन्हें समवसरण क्या? उन्हें कुछ नहीं है, सुन न! वह तो पूर्व के पुण्य के संयोगरूप से ऐसी स्थिति हुए बिना नहीं रहती। होती है। उनको कुछ नहीं है। उस छत्र के बहाने कहते हैं, **हे भगवान!** जो तीन छत्र है न आपके ऊपर? **वे लटकते हुए**

निर्मल मुक्ताफल के ब्याज से मनुष्यों की आँखों में बिन्दुओं (अश्रुओं) से अमृत की वर्षा करते हैं–ऐसा मालूम होता है। अर्थात् क्या कहते हैं ?

हे भगवन्! जिस समय भव्य जीव आपके छत्र को देखते हैं, उस समय उनको इतना आनन्द होता है कि आनन्द के मारे उनकी आँखों से अश्रुपात होने लगता है। अश्रुपात होने लगते हैं। होने लगते हैं। हर्ष के आँसू आते हैं। अर्थात्? आत्मा के स्वरूप को और आपको दोनों को देखने से अन्तर के स्वरूप में आनन्द आता है। आपकी भक्ति में हर्ष आता है, इसलिए आँख में से आँसू निकलते हैं। और उस काल में वह अशुभ परिणाम नहीं है, अशुभ कर्म टल जाते हैं। कहो, समझ में आया? भगवान का उपदेश सुने (तो) मानो अमृत बरसता हो, अमृत बरसे। कर्ण को अमृत बरसता हो ऐसा लगे। समझ में आया? मृतक हो और 'आत्मसिद्धि' सुनाने लगे। कान ऐसे कर डाले। कभी प्रेम किया नहीं और अन्दर पीड़ा... पीड़ा हो मरने की अन्तिम। वह कहाँ तक हांकेगा?

सर्वज्ञ की वाणी ऐसे प्रेमी भव्य जीव होते हैं, कहते हैं कि प्रभु! आपकी वाणी का प्रपात निकलता है न, तो हमारे तो अमृत बरसता है, ऐसा लगता है। कि जिससे अमृत के आँसू हमारी आँख में से पड़ते ही रहते हैं, ऐसी धारा... आनन्दधारा का झरना बहता है। अनाकुल स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान का झरना बहता है और पुण्य परिणाम में विकल्प आने पर, ऐसा हर्ष आने पर आँख में से आँसू बहते जाते हैं और हमारे कर्म निर्जरित हो जाते हैं। ओहोहो! फिर अकेला पकड़े कि भगवान की भक्ति से कर्म निर्जरित हो जाते होंगे।

यहाँ तो स्व और पर की दोनों को साथ में रखकर बात है। यहाँ यह कहते हैं कि जिस समय में **उनकी (भव्य की) आँखों से अश्रुपात...** अश्रुपात। आहाहा! आपका विरह। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न? प्रभु! हमें भरतक्षेत्र में भगवान त्रिलोकनाथ का विरह। ध्यान में आते हैं, वहाँ समवसरण की रचना चिन्तवन करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज यहाँ नग्न दिगम्बर भावलिंगी सन्त (विराजते थे)। जहाँ अन्दर विरह पड़ता है, रचना (चिन्तवन करते हैं), वहाँ अन्दर ऐसी पुण्य और पवित्रता का योग कि भगवान के मुख में से वाणी निकलती है—सत् धर्म वृद्धि हो, सत् धर्म वृद्धि हो। देखो! कहाँ भगवान

और कहाँ कुन्दकुन्दाचार्य! देखो! जगत में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध। ऐसा ही निमित्त सम्बन्ध कि यहाँ ऐसा है। वहाँ शक्ति से अथवा देव आकर भगवान के निकट कुन्दकुन्दाचार्य जाते हैं। साक्षात् भरतक्षेत्र के मुनि, वे साक्षात् महाविदेहक्षेत्र में विराजते प्रभु के दर्शन करते हैं। उन्हें कितना हर्ष होगा? केवलचन्दभाई! समझ में आया इसमें?

वे कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले यहाँ हुए। भगवान दूर थे, उन्हें निकट किया। व्यवहार से बाह्य में निकट किया। अन्दर तो नजदीक थे ही, भगवान आत्मा के स्वभाव के समीप (थे ही)। आठ दिन तक समवसरण में रहे। दिव्यध्वनि अमृत बरसे। समझ में आया? ऐसा आनन्द... आनन्द... आनन्द... रोम-रोम रोमांचित हो गया। रोम-रोम रोमांचित हो गया। आकर इन शास्त्रों की रचना (की)। समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, ऐसे महा अजोड़ रत्न सर्वज्ञ की वाणी की समानता करे, ऐसी वाणी, ऐसे शास्त्रों की रचना की। उन्हें अन्दर का आनन्द और बाहर का कितना होगा? कहो, समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, प्रभु! इस छत्र के बहाने हम ऐसा देखते हैं न। इस प्रकार टग... टग... टग... देखते हैं न। इसलिए लोगों को बहुत टग-टग देखे तो आँख सरखी न रहे तो पानी झर जाए। इसी प्रकार हमारे आत्मा को टग-टग करके देखते हैं और आपकी भक्ति के भाव से हम आपको देखते हैं (तो) हमें आनन्द आ जाता है। समझ में आया? लड़का कहीं से आता हो तो कितना ऐसे बाँहों में भरता है, देखा है? समझ में आया? बाँहों में भरता है। आहाहा! बापू! तू कर्मी जागृत हुआ, बापू! हमारे कुल में, हों! नरभेरामभाई! धूल भी कर्मी नहीं अब। नरक और निगोद में ले जाने को कर्मी है। चल, हम जायें वहाँ तुम सब।

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा को जो देखता है और देखता और सुनता है और समझता है, वह वास्तविक कार्य का करनेवाला कर्मी आत्मा। भगवान ने पूर्ण कार्य किया। उनकी वाणी निकली, हर्ष-हर्ष भेंट हो जाती है ऐसे मानो। भगवान से मिलते हैं... भगवान से मिलते हैं... ऐसा हो जाता है। और समवसरण में जो जीव नजदीक में जाए, उसके शरीर को देखे, उसमें सात भव देखता है। भगवान की भेंट (हो उसमें) सात भव देखे। अनन्त भव का नाश हुआ और सात भव होवे तो। अभी एक-दो भव हो,

वे (दिखते हैं)। शरीर ऐसे देखे परमौदारिक। ऐसे नजर टग-टग है। अन्दर टग-टग है और ऐसे निर्मलता हो जाती है। प्रभु! इस छत्र के बहाने हमें मानो ऐसा देखकर अमृत के अश्रु आते हों, ऐसा हम देखते हैं। कहो, समझ में आया? यह २५। २५ हुई न? २६।

गाथा २६

कयलोयलोयणुप्पलहरिसाइ सुरेसहत्थचलियाइं।
तुह देव सरइंससहरकिरणकयाइव्व चमराय।।२६।।

अर्थ - जिन चमरों को देखने से समस्त लोक के नेत्ररूपी कमलों को हर्ष होता है और जिनको बड़े-बड़े इन्द्र ढोरते हैं - ऐसे हे जिनेन्द्र! आपके चँवर, शरदऋतु के चन्द्रमा की किरणों से बनाये गये हैं - ऐसा मालूम होता है।

भावार्थ - अन्य ऋतु की अपेक्षा शरदऋतु में चन्द्रमा की किरण बहुत स्वच्छ तथा सफेद होती है, इसलिए ग्रन्थकार कहते हैं कि हे भगवन्! आपके चँवर इतने स्वच्छ तथा सफेद हैं, जो कि ऐसे मालूम होते हैं मानों शरदकालीन चन्द्रमा की किरणों से ही बनाये हुए हैं और जिनको देखनेमात्र से समस्त लोक के नेत्रों को आनन्द होता है तथा जिनको बड़े-बड़े इन्द्र आकर ढोरते हैं।

गाथा - २६ पर प्रवचन

कयलोयलोयणुप्पलहरिसाइ सुरेसहत्थचलियाइं।
तुह देव सरइंससहरकिरणकयाइव्व चमराय।।२६।।

हे प्रभु! अब तीसरा। पहला (अतिशय) अशोक (वृक्ष) लिया; दूसरा छत्र लिया; तीसरा चंवर। हवा लगती होगी भगवान को? परन्तु इन्द्रों को, देवों को भक्ति के उछाले में चौंसठ चंवर भगवान को (ढोलते हैं)। वे तो वीतराग हैं। खम्मा, अन्नदाता! ऐसा कहकर इन्द्र चंवर ढोलता है। ऐसे खम्मा आत्मा के स्वभाव को! ऐसा करके आत्मा अपने स्वभाव को सम्मत होकर अनुमोदता है।

हे जिनेन्द्र! जिन चँवरों को देखने से समस्त लोक के नेत्ररूपी कमलों को हर्ष होता है और जिनको बड़े-बड़े इन्द्र ढोरते हैं-ऐसे आपके चँवर, शरदऋतु के चन्द्रमा की किरणों से बनाये गये हैं-ऐसा मालूम होता है। गजब भाई! शरदऋतु का चन्द्र शीतल सर्दी बहुत हो और उसकी (किरणें) श्वेत बहुत हों। उनकी किरणें लाकर मानो प्रभु! यह—चंवर बनाया हो। ऐसे इन्द्र आपको चंवर ढोलते हैं। शरद ऋतु। शीतल... शीतल... शीतल... ऐसे आत्मा। प्रभु! आप शीतल-शीतल हो गये अन्दर। स्थिर हो गये... स्थिर हो गये... उपशम स्वभाव अकषायभाव से। हम भी हमारे अकषायभाव में ऐसे शरदऋतु की शीतलता जैसे स्थिर हो, वह हमारी मुक्ति का उपाय और मुक्ति का मण्डप है। आपका तो ऐसा मानो इतना आपका पुण्य, आपकी पवित्रता कि शरद ऋतु, कुदरत की ऋतु परन्तु मानो उसमें से किरण बनाकर। पागलपना तो नहीं होगा न यह? वजुभाई! मुनि हैं और पंच महाव्रत धारी। असत्य बोलने का तो त्याग है। यह भक्ति से आश्रय पाकर भगवान की भक्ति करते हैं। ऐसा भाव धर्मी को आये बिना नहीं रहता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)